प्रकाशित: 15 अगस्त 2017 को नेशनलिस्ट ऑनलाइन डॉट कॉम में प्रकाशित -

'भारत छोड़ो आंदोलन में पूरा देश अंग्रेजों को खदेड़ने में जुटा था और वामपंथी उनके साथ खड़े थे'

रमेश कुमार दुबे

जो वामपंथी आज राष्ट्रवाद का लबादा ओढ़कर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जैसे राष्ट्रवादी संगठन को कटघरे में खड़ा कर रहे हैं, उन वामपंथियों की सोच राष्ट्रीय भावनाओं से अलग ही नहीं एकदम विपरीत रही है। भारतीय इतिहास वामपंथियों की राष्ट्रविरोधी कथनी-करनी के उदाहरणों से भरा पड़ा है। देश की आज़ादी की लड़ाई के दौरान उस लड़ाई को कमजोर करने की वामपंथियों द्वारा भरसक कोशिश की गयी। दूसरे शब्दों में कहें तो देश की आजादी को रोकने के लिए इन्होने भरपूर जोर लगाया था।

भारत छोड़ो आंदोलन के समय एक ओर पूरा देश अंग्रेजों को भारत से खदेड़ने में जुटा था, तो दूसरी ओर वामपंथी अंग्रेजों के समर्थन में खड़े थे। उनके इस देशद्रोही चरित्र पर टिप्पणी करते हुए 24 मार्च 1945 को भारत के अतिरिक्त गृह सचिव रिचर्ड टोटनहम ने कहा था 'भारतीय कम्युनिस्टों का चरित्र ऐसा है कि वे किसी का विरोध तो कर सकते हैं, लेकिन किसी के सगे नहीं हो सकते सिवाय अपने स्वार्थों के।' वामपंथियों का असली चरित्र इसी से उद्घाटित होता है कि उन्होंने नेताजी सुभाष चंद्र बोस को "तोजो का कुत्ता" कहा क्योंकि उन्होंने आजाद हिंद फौज के गठन के लिए जापान के तत्कालीन प्रधानमंत्री तोजो की सहायता ली थी। वामपंथियों ने न कवेल देश विभाजन का समर्थन किया बल्कि एक ऐसी अवधारणा प्रस्तुत की जिसमें कई देश बन सकते थे। 1942 में सीपीआई के तत्कालीन महासचिव सी पी जोशी ने कहा था – भारत एक राष्ट्र नहीं बल्कि यह अलग-अलग राष्ट्रीयता का समूह है। उन्होंने मुसलमानों के आत्मनिर्णय के अधिकार को मान्यता देने की भी मांग की और मुस्लिम लीग के द्विराष्ट्रवाद का पुरजोर समर्थन किया। इतना ही नहीं इन्होंने महात्मा गांधी को खलनायक और मुहम्म्द अली जिन्ना को नायक की उपाधि दे दी। 1946 में वामपंथियों ने कहा भारत एक राष्ट्र नहीं बल्कि 17 राष्ट्रों का एक समूह है। स्पष्ट है कि यदि वामपंथियों की कुटिल चाल कामयाब हुई होती आज 17 पाकिस्तान होते। आजाद भारत में भी वामपंथियों ने यही किया। केरल में कम्युनिस्ट मुख्यमंत्री ईएमएस नंबूदरीपाद ने मुस्लिम तुष्टीकरण नीति पर चलते हुए मामल्लपुरम नामक मुस्लिम बहुल जिले का गठन किया। यही विघटनकारी और देश विरोधी वामपंथी सोच आज जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय में "भारत की बर्बादी" का नारा लगा रही है। वामपंथी भले ही देश को बहुराष्ट्रवाद की तरफ धकेलने में नाकाम रहे हों, लेकिन आजादी के बाद बौद्धिक रूप से दिवालिया कांग्रेस की गोद में बैठने में जरूर कामयाब रहे। इस क्रम में उन्होंने देश की

समृद्ध वैचारिक और सांस्कृतिक विरासत की उपेक्षा करते हुए इतिहास को अपनी सुविधानुसार तोड़-मरोड़ कर पेश किया। उन्होंने धर्मनिरपेक्षता के नाम पर भारत में मुस्लिम आक्रमणकारियों की बर्बर भूमिका को ढंक दिया। हिंदू मंदिरों को तोड़ने को धार्मिक बर्बरता के बजाय आर्थिक आधार बताया। हर दंगों के पीछे हिंदू राष्ट्रवादियों की निदा करते और धार्मिक अनुष्ठान को मुख्य कारण बताकर मुस्लिम कट्टरता का संरक्षण किया। मुस्लिमपरस्त सोच का ही नतीजा रहा कि राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ जैसे सैकड़ों संगठन और वीर सावरकर जैसे हजारों स्वतंत्रता सेनानियों के योगदान को देश ठीक प्रकार से जान ही नहीं पाया। आजादी के बाद भी हम भगत सिंह "आतंकवादी" और शिवाजी को "पहाड़ी चूहा" पढ़ते रहे तो इसकी वजह वामपंथी इतिहासकार ही हैं। इसे संयोग ही कहा जाएगा कि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (सीपीआई) और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) दोनों की स्थापना 1925 में हुई लेकिन जहां आरएसएस स्वयंसेवा के जरिए अखिल भारतीय विस्तार हासिल किया वहीं वामपंथ सत्ता की मलाई खाते हुए भी केरल, पश्चिम बंगाल और त्रिपुरा से आगे नहीं बढ़ पाए। आज की तारीख में भारत में वामपंथी राजनीति चार धड़ों में बंटी हुई है- भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी), सीपीआई(एमएल) और फारवर्ड ब्लाक। कई राज्यों में ये आपस में ही लड़ते रहे हैं। वामपंथियों ने राजनीति तो सर्वहारा के नाम पर की लेकिन सर्वहारा के शोषण करने का कोई मौका नहीं छोड़ा। इसी का नतीजा है कि लगातार 30 साल तक वाम मोर्चा शासित पश्चिम बंगाल में आज भयानक बदहाली है। घटते जनसमर्थन के कारण न केवल लोक सभा इनका प्रतिनिधित्व घट रहा है बल्कि राज्यों में अब ये केरल और त्रिपुरा तक सिमट चुके हैं। इसके बावजूद ये अपनी कमियों को दूर न कर अपनी पूरी ऊर्जा भारतीय जनता पार्टी के विस्तार को रोकने में खर्च कर रहे हैं। जो वामदल अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता के लिए पहचाने जाते थे, वे अब सत्ता के लिए उसी से समझौता करने लगे हैं। उदाहरण के लिए 2016 के विधान सभा चुनावों में जहां पश्चिम बंगाल में वाममोर्चा ने कांग्रेस से गठबंधन किया, वहीं केरल में वह कांग्रेस के विरोध में चुनाव लड़े। इसका परिणाम यह हुआ कि दोनों जगह उसे पराजय का मुंह देखना पड़ा। केरल में अपने घटते जनाधार को बचाने के लिए वामपंथी उसी तरह हिंसक गतिविधियों का सहारा ले रहे हैं जैसे कभी पश्चिम बंगाल में करते थे। स्पष्ट है कि केरल में भी वाम राजनीति के गिने-चुने दिन ही रह गए हैं।

(लेखक केन्द्रीय सचिवालय में अधिकारी हैं। ये उनके निजी विचार हैं।)